बरू भल बास नरक करिताता

Baru Bhal Baas Narak Karitata

व्यवहार का औचित्य, : यह लोक कथा प्रचलित है-पावस के रंग में रंगी हुई शीत निशा में एक बन्दर वृक्ष की शाखा पर ठिठुरा बैठा था। उसी वृक्ष की एक शाखा पर गौरैया का सुन्दर घोंसला था। वह उसमें बैठी बन्दर की अवस्था को निहार रही थी। दयाभाव से सहानुभूति हेतु वह कह उठी, "तुम इतने बुद्धिमान् एवं शक्तिशाली जीव होकर भी आँधी, शीत और पानी से अपने बचाव का प्रबन्ध नहीं कर सकते ?" गौरैया के इन शब्दों से बन्दर के आत्म-सम्मान को चोट पहूँची और उसकी प्रकृति के अनुसार प्रतिक्रिया जाग्रत हो उठी। फलस्वरूप एक उछाल में ही वह सुन्दर घोंसला तिनकों का ढेर बन गया। इससे स्पष्ट है कि दुष्ट स्वभाव विपरीत दिशा की ओर प्रवाहित होता है। ऐसी प्रकृति वाले को समझना, अनुकूल व्यवहार की आशा करना और विद्वत्ता एवं समर्थ गुण होते हुए भी उससे सत्कार्य की आशा करना स्वयं को धोखा देना है। गौरैया का पहला दोष था, उस वृक्ष पर घोंसला बनाना, जिस पर बन्दर जैसे दुष्ट प्रकृति वाले जीवों का वास हो और दूसरा दोष था ऐसी प्रकृति वाले जीव के साथ सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा करना। इन्हीं दोषों के कारण उस बेचारी को अपने ठिकाने से भी हाथ धोना पड़ा और ठंड भी सहनी पड़ी। तब उसे पता चला कि दुष्ट का साथ शक्तिशाली जीव से अधिक भयंकर होता है, अधिक घातक होता है। इस सम्बन्ध में रहीम जी के विचार कितने सुन्दर हैं :

"बसि कुसंग चाहत कुशल यह रहीम अफ़सोस ।

महिमा घटी समुद्र की रावण बस्यो पड़ोस ।।"

दुष्ट के साथ दुष्टता की चेतना : सागर की सीमा अक्षुण्ण है। उसे किसी प्रकार सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता; पर इतिहास इस बात का साक्षी है कि सागर की सीमा को भी एक बार बँधना पड़ा। उस पर नल-नील वानरों द्वारा पुल बाँधा गया। तब उस पर राम-लक्ष्मण सहित अनेक बानर और भालू आदि जीव उतर गये। ऐसा क्यों हुआ ? सागर को अपमानित क्यों होना पड़ा ? कारण था दुष्ट रावण का पड़ोस। 'गेहूँ के साथ घुन पिस गया' यह लोकोक्ति सागर पर चरितार्थ होती है। बेचारे को दुष्ट संगति का दण्ड भोगना पड़ गया।

दूरदर्शी कबीर में कहते हैं जी इस प्रकार की प्रकृति वाले से बचने के लिए चेतावनी भरे शब्दों मे कहते हैं :

केला तभी न चेतया जब ढिंग लागि बेरि ।

अबके चेते क्या भया, काँटनि लीन्हा घेरि ।।"

कितनी सटीक उक्ति है केले को तभी चेतना चाहिये था, जब उसके समीप बेरी उगी थी। अब बेरी ने विस्तृत होकर उसे चारों ओर से घेर लिया है, तब उससे उसका सुकुमार अंग न छिले, ऐसी आशा कैसे की जा सकती है ? दुष्ट कभी भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ सकता है। इन पंक्तियों के आशय को ही देखिये:

"दुष्ट न छाडे दुष्टता, कोटिक 'करो उपाय ।

कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन खाय ।।

कोयले को कितना ही साबुन से रगड़िये ? वह कभी भी स्वच्छ-श्वेत नहीं होगा। यही हाल दुष्ट-प्रकृति का है। वह कदापि नहीं समझ सकता है; बल्कि उसके सामीप्य को ग्रहण करने से तो बुद्धि, ज्ञान और विद्या भी अपने महत्त्व को भूल जाते हैं। आप तनिक विचार कीजिए, वेदों एवं उपनिषद ज्ञाता लंकापति रावण दूसरे की पत्नी का हरण करने के लिए तत्पर हुआ। महर्षि दुर्वासा अपनी क्रोधित प्रकृतिके प्रतीक बने। भस्मासुर जैसा अमर एवं अजेय प्राणी दुष्ट-प्रकृति के कारण पहले तो शिव को भस्म करने के लिये उद्यत हुआ पर स्वयं ही अपने सिर पर हाथ रख कर भस्म हो गया। हिरण्याक्ष ने सारी पृथ्वी को सागर में डुबाने की चेष्टा की। इब्राहीम लोदी मुस्लिम शासक ने मानवीय सभासदों को अपने सामने सदा हाथ बाँधे खड़ा रखा। यह सब दुष्ट स्वभाव का ही कारण है, यदि देखा जाय तो ज्ञान, बुद्धि और विद्या का दुष्टता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; किन्तु इसका सम्बल पाकर दुष्टता प्रबल एवं दु:खदायी हो जाती है। क्योंकि गुण भी दोषी के हाथ पड़ जाने से अवगुण बन जाते हैं। जिस प्रकार नदियों का मीठा जल भी सागर में पड़ते ही खारा बन जाता है।

प्रकृति की अनिवार्यता : इन सब उक्तियों से स्पष्ट है कि जीव के समस्त आचरण पर प्रकृति ही शासन करती है। अत: मूढ़ व्यक्ति के द्वारा ठीक कार्य करने की आशा करना

व्यर्थ है। शत्रु से बचा जा सकता है; किन्तु दुष्ट से बचना असम्भव है। इसका कारण है उसकी दुष्ट प्रवृत्ति, जिसे दूसरे को सताने, निन्दा करने और उसके कार्य को बिगाड़ने में एक प्रकार का आनन्द अनुभव होता है। तुलसी जी ने तो श्रेष्ठ कार्यों की सिद्धि के लिए दुष्ट जनों को नमस्कार करना उचित माना है; क्योंकि उनकी कृपा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है।

उपसंहार : इस पर कुशलता इसी में है कि दुष्ट का साथ तत्काल ही छोड़ देना चाहिए; क्योंकि यह नितान्त सत्य है कि दुष्ट संगति की अपेक्षा नरक का निवास अत्यन्त श्रेष्ठ है। नरक में केवल दैहिक यातनाएँ ही सहन करनी पड़ती हैं; पर दुष्ट संगति से तन, मन और आत्मा तीनों ही विनिष्ट हो जाती हैं।